भारतीय परिप्रेक्ष्य में मिश्रित सरकारों की भूमिका

डॉ. कमलेश कुमार सिंह
(एसोशिएट प्रोफेसर) एवम्
विभागाध्यक्ष राजनीतिविज्ञान विभाग,
के. ए. (पी.जी.) कालेज, कासगंज

एक संसदीय शासन व्यवस्था में राजनीतिक सत्ता का केन्द्रबिन्दु मंत्रिमंडल होता है, जो अपने कार्यों के लिए सामूहिक रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होता हैं। केन्द्र में बनने वाली मिश्रित सरकारों का आधार, उनका स्वरूप, कार्यशैली और निष्पादन राज्यों में गठित मिश्रित सरकारों से भिन्न नहीं है। सत्ता प्राप्त करने की होड़, राजनीतिक स्वार्थपरता, सिद्धान्त–विहीन गठबन्धन और व्यक्तिगत हितों की प्राथमिकता, केन्द्र की मिली–जुली सरकारों की सामान्य विशेषताएँ थीं। विभिन्न राजनैतिक दलों ने एक दूसरे को सिद्धान्त या कार्यक्रम के आधार पर समर्थन नहीं दिया वरन् व्यक्ति के नाम पर समर्थन या विरोध किया। केन्द्र में गठित की गई मिश्रित सरकारों में क्षेत्रिय दलों का बाहुल्य रहा और सरकार बनवाने और गिराने में उन्होंने सक्रिय भूमिका अदा की। इस प्रकार क्षेत्रीय राजनीतिक दलों तथा राज्यों में सत्तारूढ़ राजनीतिक दलों पर केन्द्र सरकार की निर्भरता दिन प्रतिदिन बढ़ती गई।

एक संसदीय शासन व्यवस्था में राजनीतिक सत्ता का केन्द्रबिन्दु मंत्रिमंडल होता है, जो अपने कार्यों के लिए सामूहिक रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होता हैं। मंत्रिमण्डल का स्वरूप, उसका कार्य–संचालन और उसकी प्रभावशीलता विधानमण्डल की दलीय स्थिति पर निर्भर करती है। इंग्लैण्ड की संसदीय परम्पराओं के अनुसार प्रत्येक आम चुनाव के पश्चात् संसद के निम्न सदन में जिस राजनीतिक दल को बहुमत प्राप्त होता है, सामान्यतया उसी दल के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जाता है। इस प्रकार बहुमत प्राप्त दल द्वारा गठित मंत्रिमण्डल को समदलीय (होमोजिनस) मंत्रिमण्डल कहा जाता है[1]; क्योंकि इसमें सारे सदस्य या मंत्री केवल एक ही दल (बहुमत प्राप्त दल) के होते हैं। कभी ऐसा भी होता है, या हो सकता है कि संसद में किसी भी राजनीतिक दल को बहुमत प्राप्त न हो सके। ऐसी स्थिति में दो या दो से अधिक राजनीतिक दल एक न्यूनतम कार्यक्रम के आधार पर संगठित हो जाते हैं और इस तरह बहुमत का निर्माण तथा फलस्वरूप मंत्रिमंडल का गठन करते हैं। एक से अधिक राजनीतिक दलों को मिलाकर जो मंत्रिमंडल या सरकार बनती है, उसे मिश्रित या मिला–जुला सरकार कहते हैं। ऐसे सरकार में सामान्यतया उन सभी राजनीतिक दलों को प्रतिनिधित्व दिया जाता है जो कुछ सामान्य सिद्धान्तों के आधार पर संगठित हुए हैं। यह स्मरणीय है कि मिले–जुले सरकार में जो घटक राजनीतिक दल होते हैं, वह सरकार बनाने के उद्देष्य से संगठित होने के बाद भी अपने पृथक् दलीय अस्तित्व को बनाए रखते हैं अर्थात् उनके स्वतन्त्र राजनीतिक दलों की पहचान बनी रहती है। वे किसी भी समय सरकार से अपना समर्थन वापस लेकर सरकार से अलग हो सकते हैं। कभी–कभी यह भी होता है कि कोई दल बिना मंत्रिमंडल में सम्मिलित हुए, सरकार को समर्थन देता रहता है।

1952 के प्रथम चुनाव से 1967 के चतुर्थ चुनाव तक भारतीय राजनीति में कांग्रेस दल का एकाधिकार रहा। केन्द्र में और देश के अधिकांश राज्यों में कांग्रेस दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त रहा। अतः स्थिर और समदलीय सरकारों का गठन होता रहा[2]।

1967 के चतुर्थ आम चुनाव में कांग्रेस दल के राजनीतिक एकाधिकार का अन्त हो गया। इस चुनाव में केन्द्र में यद्यपि कांग्रेस दल को ही बहुमत प्राप्त हुआ, लेकिन इसे प्राप्त स्थानों में भारी कमी आयी। 1967 में जिन 16 राज्यों में विधानसभा के चुनाव हुए, उनमें से आठ राज्यों में कांग्रेस सहित कोई भी

राजनीतिक दल पूर्ण बहुमत पाने में असफल रहा। ये राज्य थे– बिहार, पश्चिम बंगाल, केरल, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान तथा उत्तरप्रदेश[3]। हरियाणा में कांग्रेस दल को बहुमत मिला, किन्तु दल परिवर्तन के कारण कांग्रेस को सरकार बनाने का अवसर न मिल सका। इस प्रकार देश के सांविधानिक इतिहास में पहली बार आठ राज्यों में मिश्रित सरकारों का निर्माण हुआ। वास्तविकता यह है कि मिली जुली सरकार का पूरा अनुभव 1967–71 के बीच ही हुआ। इन चार वर्षों में 32 राज्य सरकारों का निर्माण और अन्त हुआ। आरम्भ में कांग्रेस दल मिश्रित सरकार बनाने के पक्ष में न था, यद्यपि राज्यों में ऐसी स्थिति थी कि कांग्रेस किसी विपक्षी दल की सहायता से सरकार बना सकती थी। बाद में कांग्रेस दल ने भी विपक्षी दलों की सहायता से कुछ राज्यों में सरकार का निर्माण किया। कुछ राज्यों में कांग्रेस ने विपक्षी दलों को समर्थन दे कर सरकार का निर्माण कराया, किन्तु कांग्रेस औपचारिक रूप से सरकार में सम्मिलित नही हुई।

कुछ राज्यों में कांग्रेस दल औपचारिक रूप से सरकार में सम्मिलित नहीं हुआ; लेकिन गैर कांग्रेस दलों को अपना समर्थन देकर सरकार गठित करने में उनकी सहायता की। उदाहरण के लिए बिहार में बी.पी. मण्डल और भोला पासवान की सरकारों को कांग्रेस ने सरकार से बाहर रहकर अपना समर्थन दिया। केरल में अच्युत मेनन सरकार को कांग्रेस का समर्थन प्राप्त रहा। पंजाब में प्रकाशचन्द्र बादल के नेतृत्व में बनने वाली अकाली–जनसंघ मिश्रित सरकार को कांग्रेस ने समर्थन दिया। उत्तरप्रदेश में चौधरी चरण सिंह के नेतृत्व में फरवरी 1970 में जिस साझा सरकार का निर्माण किया गया था, उसे कांग्रेस का समर्थन प्राप्त था। बाद में कांग्रेस ने अपना समर्थन वापस ले लिया फलस्वरूप सरकार का अन्त हो गया।

1967 के चुनाव में कांग्रेस की पराजय के पश्चात् अनेक राज्यों में विपक्षी दलों को सत्ता में आने का अवसर मिला, इसलिए वे इस स्थिति से हर कीमत पर लाभ उठाना चाहते थे और सरकार बनाने के लिए उत्सुक थे। परिणाम यह हुआ कि विपक्षी दल बगैर सिद्धान्तों को तालमेल देखे हुए केवल राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के उद्देष्य से आपस में मिल गये। इन मिश्रित सरकार में अधिकांशतः दो से अधिक राजनीति दल अवश्य शामिल थे पश्चिम बंगाल में अजय मुखर्जी के नेतृत्व में बनने वाले यूनाइटेड डेमोक्रेटिक फ्रंट सरकार में 14 राजनीतिक दल सम्मिलित थे[4]। यह भी उल्लेखनीय है कि विभिन्न राष्ट्रीय दलों ने किसी ऐसी सामान्य नीति का भी प्रतिपादन नहीं किया कि वह किन राजनीति दलों के साथ मिल सकते हैं और किन दलों के साथ उनका मिलना सम्भव न होगा। परिणाम यह हुआ कि एक राज्य में एक दल ने जिन राजनीति दलों के साथ मिलकर सरकार का गठन किया, दूसरे राज्यों में वही राजनीतिक दल उनमें से किसी दल के साथ मिलने को तैयार नहीं हुये।

यह भी उल्लेखनीय है कि सरकार– निर्णय कि लिए राजनीतिक दलों के बीच जो एकता स्थापित हुई उसका कोई सैद्धान्तिक आधार भी न था। उत्तरप्रदेश में निर्मित संविद सरकार के घटकों में साम्यवादी दल और जनसंघ (दो परस्पर विरोधी विचारधारा वाले दल) दोनों ही सम्मिलित थे। पंजाब में बनी साझा सरकारों में अकाली दल के साथ जनसंघ तथा साम्यवादी दल भी सम्मिलित थे। बिहार में महामाया प्रसाद सिन्हा सरकार 8 राजनीतिक दलों से निर्मित था जिसमें साम्यवादी दल, भारतीय जनसंघ तथा सोशलिस्ट दल सम्मिलित थे। दरोगा प्रसाद (कांग्रेस आई) के नेतृत्व में बनने वाले सरकार में कांग्रेस (आई) के साथ साम्यवादी दल, भारतीय क्रांतिदल आदि सम्मिलित थे। ऐसा लगता है कि लगभग सभी राजनीतिक दल किसी भी दल के साथ मिलकर सरकार बनाने के लिए तैयार रहे और जब भी एक सरकार का विघटन होता था, उसके लगभग सभी घटक किसी दूसरे व्यक्ति के नेतृत्व में दूसरे सरकार का निर्माण कर लेते थे। मिली–जुली सरकारों के निर्माण में राजनीतिक नैतिकता का कोई स्थान नहीं था, केवल व्यक्तिगत स्वार्थ ही प्रेरक तत्व रहा[5]।

अधिकांश सरकारों का निर्माण किसी निश्चित सिद्धान्त या कार्यक्रम के आधार पर नहीं हुआ था, इसलिए वे शीघ्र ही छिन्न–भिन्न हो गए। आए दिन सरकारें बनती और टूटती रहीं और किसी भी राज्य में कोई एक भी सरकार अपनी पाँच वर्ष की अवधि पूरी न कर सका। देश के अधिकांश बड़े राज्यों में इस तरह के राजनीतिक अस्थायित्व का अनुभव पहली बार किया गया।

जिन राज्यों में भी मिली जुली सरकारों का निर्माण हुआ, उनमें से लगभग सभी में सरकार का निर्माण करने के लिए दल–परिवर्तन के साधन को अपनाया गया। धन और मंत्रिमण्डलीय पदों का प्रलोभन देकर विधायकों को एक दल को छोड़कर दूसरे दल में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया गया। इस राजनीतिक

सौदेबाजी में कांग्रेस और विपक्ष के सदस्यों के अतिरिक्त निर्दलीय सदस्यों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। कुछ राज्यों में तो भारी मूल्य देकर विधायकों को खरीदे जाने की घटनाएँ सामने आई। इससे राजनीतिक अनैतिकता को प्रोत्साहन मिला।

मिली–जुली सरकारों की अस्थिरता के कारण राज्यों की जनतन्त्रीय व्यवस्था निरन्तर छिन्न–भिन्न होती रही, लगभग हर राज्य में विधानसभा का स्थगन और विघटन हुआ और राष्ट्रपति शासन बार–बार आरोपित किया गया। 1967–71 के बीच बिहार, उत्तरप्रदेश और पंजाब में दो–दो बार राष्ट्रपति शासन लागू किया गया और प्रत्येक राज्य में जहाँ मिली–जुली सरकारें बनी थीं, उनमें कम से कम एक बार मध्यावधि चुनाव अवश्य कराने पड़ें[6]।

सरकार की अस्थिरता के कारण नीति–निर्माण और नीति–कार्यान्वयन दोनों ही प्रक्रियायें बुरी तरह प्रभावित हुई। जल्दी–जल्दी सरकारों के बनने और टूटने के कारण नीतियों में निरन्तरता का बना रहना असम्भव हो जाता है। दूसरी ओर स्थायी लोक कर्मचारियों में नीतियों को कार्यान्वित करने के मामले में उदासीनता और शिथिलता उत्पन्न हो जाती है। वे सोचते हैं कि जिस मंत्री ने आज एक नीति का निर्माण किया है। वह स्वयं कुछ दिनों बाद पद पर न रहेगा, जब दूसरा मंत्री आयेगा तो वह अपने अनुसार नीतियों का निर्माण करेगा। इसलिए कर्मचारी अपने दायित्वों के निर्वहन में पूरी रूचि नहीं लेते। परिणाम यह हुआ कि लगभग सभी राज्यों में मतदाताओं की आशाओं के विपरीत मिली–जुली सरकारों के शासन काल में सामान्य प्रशासन विशेषकर शान्ति और व्यवस्था की स्थिति बहुत खराब रही। इससे जन साधारण को गैर–कांग्रेसी राजनीतिक दलों से बड़ी निराशा हुई।

मिली–जुली सरकारों के निर्माण का बहुत बड़ा लाभ कांग्रेस दल को मिला। तीन चार वर्षों की गैर कांग्रेसी सरकारों के निष्पादन ने यह सिद्ध कर दिया कि विपक्षी दलों में सरकार चलाने की क्षमता नहीं है और कांग्रेस के अतिरिक्त कोई अन्य दल स्थायी सरकार और अपेक्षाकृत कुशल शासन नहीं दे सकता। 1971 के चुनाव में कांग्रेस दल के राजनीतिक एकाधिकार की पुनर्स्थापना के पीछे जनसाधारण की इसी धारणा ने निर्णायक भूमिका अदा की और श्रीमती गांधी को अप्रत्याशित बहुमत प्राप्त हुआ।

सरकार की अस्थिरता के कारण नौकरशाही को अत्यधिक सफलता मिली। मिली–जुली सरकारों के अधिकांश मंत्रियों को प्रशासन का कोई अनुभव भी नहीं था, ऐसी स्थिति में लोक कर्मचारियों का प्रभुत्व स्वाभाविक रूप से बढ़ गया।

1967–69 के बीच बनने वाले साझा सरकारों का आकार काफी बढ़ गया। मंत्रिमण्डलीय पद राजनीतिक सौदेबाजी का साधन बन गए। विभिन्न घटकों को सतुष्ट करने और दल–परिवर्तन को रोकने के लिए प्रत्येक मुख्यमंत्री ने प्रभावशाली विधायकों को मंत्रिमंडल में स्थान देने की नीति को अपनाया। इससे मंत्रिमण्डल की सदस्यसंख्या में वृद्धि और परिणाम स्वरूप सरकार के आर्थिक भार में अपार वृद्धि हुई[7]।

सरकार के अस्थायित्व के कारण केन्द्र सरकार का हस्तक्षेप राज्य के आन्तरिक मामलों में बढ़ गया। चूँकि केन्द्र में कांग्रेस सत्ता में थी, और राज्यों की मिली–जुली सरकारों का नेतृत्व अधिकांशतः गैर कांग्रेसी दलों के हाथों में था, इसलिए केन्द्र और राज्यों के बीच गम्भीर टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गई। विभिन्न राज्यों में अनेक सांविधानिक विवाद जैसे विधानसभा का विघटन, विधानसभा में बहुमत निर्धारण का प्रश्न, राज्यपाल और विधानसभा के सम्बन्ध, राज्यों में केन्द्र द्वारा सेना की तैनाती आदि प्रश्न उठ खड़े हुए। गैर कांग्रेसी राज्यों की ओर से राज्य स्वायत्ता की माँग हुई। इन सब बातों से एक ऐसा वातावरण पैदा हुआ, जिसमें स्वयं संघीय व्यवस्था खतरे में पड़ गई।

अधिकांश विधानसभाओं में पहली बार कांग्रेस दल को विपक्ष के रूप में कार्य करना पड़ा। आश्चर्य की बात यह है कि कांग्रेस दल का विपक्ष के रूप में लगभग वैसा ही आचरण रहा, जैसा कि गैर कांग्रेसी दलों का कांग्रेस के शासनकाल में रहता था और जिसकी शिकायत कांग्रेस सरकार करती रहती थी।

मंत्रिमण्डल प्रभावहीन और मुख्यमंत्री का पद सामान्यतया अप्रभावी हो गया और उसका स्थान विभिन्न घटकों की प्रतिनिधि संस्था 'समन्वय समिति' ने ले लिया[8]। कुछ राज्यों के लिए तो घटक–राजनीतिक दलों के राष्ट्रीय संगठनों द्वारा दिल्ली से मुख्यमंत्री का चयन करके राज्य में तैनात कर दिया गया। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश में टी.एन. सिंह को मुख्यमंत्री के रूप में दिल्ली से चुनकर भेजा गया था। ऐसी स्थिति में मुख्यमंत्री की स्वतंत्रता और व्यक्तिगत प्रभाव का कम हो जाना स्वाभाविक था। मंत्रिमण्डल में किन लोगों

को लिया जाए, उनके बीच विभागों का वितरण किस प्रकार हो, आदि, कार्य जो मूल रूप से मुख्यमंत्री का परमाधिकार समझे जाते हैं, समन्वय समिति के हाथों में पहुँच गए।

मिली–जुली सरकारों में भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला। जो राजनीतिक दल इनमें सम्मिलित थे, उनमें अधिकांश को पहली बार सत्ता में आने का अवसर मिला था। वे यह भी जानते थे कि यह सत्ता कुछ ही दिनों के लिए है, अतः अपने राजनीतिक पदों से जो भी लाभ सम्भव हो सका, उठाने में संकोच नहीं किया गया।

मिश्रित सरकारों के निर्माण के पीछे 'कांग्रेस हटाओ भावना' और 'राजनीतिक अवसरवादिता' अथवा स्वार्थ, दो मुख्य आधार थे। इनसे प्रेरित होकर विभिन्न राजनीतिक दल अपने सिद्धान्तों और कार्यक्रमों पर ध्यान दिए बगैर सामयिक रूप से आपस में मिल गए। मिश्रित सरकारें साम्प्रदायिक, धर्मनिरपेक्षी, पूंजीवादी, साम्यवादी, प्रगतिशील और परम्परावादी तत्वों का सम्मिश्रण थीं। इस प्रकार परस्पर विरोधी विचारधाराओं वाले राजनीतिक दलों से जिन सरकारों का निर्माण हुआ था, उनमें स्थायित्व होने का प्रश्न ही न था। इन सरकारों के निर्माण का कोई ठोस सैद्धान्तिक आधार न था, यही कारण था कि इन सरकारों के गठन के कुछ ही दिनों बाद उनके घटकों में मतभेद उत्पन्न हो गया। कुछ राज्यों में राजनीतिक दलों ने एक न्यूनतम कार्यक्रम के आधार पर सरकार का निर्माण किया, लेकिन सरकार बनाने के बाद स्वयं उस कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के प्रश्न को लेकर झगड़े शुरू हो गए।

मिश्रित सरकारों के टूटने का दूसरा प्रमुख कारण तेजी से होने वाले दल–परिवर्तन थे। धन और मंत्रिमण्डलीय पदों की आकांक्षा ने विधायकों को एक दल को छोड़कर दूसरे दल में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया। दल परिवर्तन पर कोई रोक न होने के कारण विधायक अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के अनुसार एक दल से दूसरे दल में मिलते और अलग होते रहे, फलस्वरूप सरकारें बनती और टूटती रहीं। इस प्रक्रिया में निर्दलीय सदस्यों की भूमिका बड़ी ही आश्चर्यजनक रही। कुछ राज्यों में तो सरकारों के पतन के लिए निर्दलीय सदस्य ही मूलरूप से उत्तरदायी थे।

मिश्रित सरकार के घटक–राजनीतिक दलों ने एक समन्वय समिति का गठन किया था जिसका उद्देश्य पारस्परिक सामंजस्य स्थापित करना और सामान्य नीतियों को निर्धारित करना था[9]। लेकिन समन्वय समिति ने 'सुपर कैबिनेट' का रूप धारण कर लिया और मुख्यमंत्री तथा मंत्रियों की नियुक्ति से लेकर प्रतिदिन के मामलों में इसका हस्तक्षेप बढ़ता रहा जिससे मुख्यमंत्री का पद शक्तिहीन और महत्वहीन हो गया। यह स्वाभाविक था कि मुख्यमंत्री विभिन्न घटक–नेताओं, विधायकों, दल के राष्ट्रीय संगठन तथा समन्वय के सदस्यों, सबको कैसे संतुष्ट कर सकता था।

जिन राज्यों में मिली–जुली सरकारों का गठन एक न्यूनतम कार्यक्रम के आधार पर हुआ, उनमें से कुछ के टूटने लिए स्वयं यह कार्यक्रम उत्तरदायी था। यह कार्यक्रम व्यावहारिक होने की अपेक्षा आदर्शवादी अधिक था। इन सरकारों का कार्यक्रम आकर्षक था, किन्तु उनमें कार्य करने की इच्छा का अभाव था। परिणाम यह हुआ कि उस कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के विषय पर आपस में झगड़ा हुआ। जैसे उत्तर प्रदेश में चौधरी चरण सिंह ने मुख्यमंत्री पद ग्रहण करने के बाद न्यूनतम कार्यक्रम में सम्मिलित सवा छः एकड़ भूमि पर लगान माफ करने की नीति को कार्यान्वित करने से इन्कार कर दिया। परिणामस्वरूप सं. सो.पा. जो संविद सरकार का एक घटक थी, सरकार से अलग हो गई और संविद सरकार विघटित हो गई।

केन्द्र में पहली बार मिश्रित सरकार की स्थापना 1977 में हुई। 1977 में अब तक केन्द्र में 11 गैर–कांग्रेसी सरकारों का निर्माण हुआ। यह सभी सरकारें एक से अधिक राजनीतिक दलों ने मिलकर बनायीं और इनमें से कुछ के अतिरिक्त किसी ने भी पाँच साल की कार्यावधि पूरी नहीं की।

केन्द्र में मिश्रित सरकारें

क्र.सं.	प्रधानमंत्री	छल	कार्यावधि		कुल कार्यकाल
1.	मोरारजी देसाई	जनता दल	24.3.77	28.7.79	857 दिन
2.	चौधरी चरण सिंह	जनता दल	29.7.79	20.8.79	23 दिन
3.	वी.पी. सिंह	जनता दल	2.12.89	10.11.90	343 दिन
4.	चन्द्रशेखर	जनता (सो.)	10.11.90	21.6.91	224 दिन
5.	अटल बिहारी वाजपेयी	भाजपा	16.5.96	28.5.96	13 + 3 दिन
6.	एच.डी. देवगौड़ा	जनता दल (संयुक्त मोर्चा)	1.6.96	21.4.97	325 दिन
7.	आई.के. गुजराल	जनतादल संयुक्त मोर्चा	21.4.97 29.11.97	28.11.97 18.3.98	332 दिन कार्यवाहक
8.	अटल बिहारी वाजपेयी	एन.डी.ए.भाजपा	19.3.98	17.4.99	395 दिन
9.	अटल बिहारी वाजपेयी	एन.डी.ए.भाजपा	13.11.99	22.5.2004	पांच वर्ष
10.	डा. मनमोहन सिंह	यू.पी.ए.(कांग्रेस)	22.5.2004	26.5.2014	10 वर्ष
11.	नरेन्द्र मोदी	एन.डी.ए.भाजपा	26.5.2014		कार्यरत

सन् 1977 के लोकसभा चुनाव के अवसर पर गैर–कांग्रेसी दलों ने संगठित होने का प्रयास किया। कांग्रेस को पराजित करने के उद्देश्य से संगठन कांग्रेस, भारतीय जनसंघ, भारतीय लोकदल और सोशलिस्ट पार्टी ने मिलकर जनता पार्टी के नाम से एक नए राजनीतिक दल का गठन किया। इस नव–निर्मित दल ने जगजीवन राम के नेतृत्व में गठित नये राजनीतिक दल 'कांग्रेस फार डेमोक्रेसी' (सी. एफ.डी.) से चुनाव–समझौता करके कांग्रेस के विरुद्ध चुनाव लड़ा। बाद में सी.एफ.डी. का भी जनता पार्टी में विलय हो गया[10]।

1977 के चुनाव में जनता पार्टी को भारी सफलता मिली और देश में पहली बार 24 मार्च 1977 को राष्ट्रीय स्तर पर एक गैर कांग्रेसी सरकार का निर्माण हुआ जिसका नेतृत्व मोरारजी देसाई ने किया। यद्यपि औपचारिक रूप से जनता पार्टी के घटकों ने विलय की घोषणा की थी; किन्तु आन्तरिक रूप से वे सब अलग–अलग ही रहे और प्रधानमंत्री के चयन के प्रश्न पर ही उनमें घोर मतभेद रहा। यद्यपि जगजीवन राम और चौधरी चरण सिंह ने जयप्रकाश नारायण तथा कुछ अन्य वरिष्ठ नेताओं के दबाव के कारण मोरारजी देशाई के नेतृत्व को स्वीकार कर लिया था, किन्तु वे दोनों ही इस पद के दावेदार थे। जनता पार्टी के आन्तरिक संघर्ष के परिणामस्वरूप 28 मास के बाद 15 जुलाई 1979 को मोरारजी देसाई को त्यागपत्र देना पड़ा।

29 जुलाई को जनता (एस) तथा कांग्रेस (अर्स.) ने चौधरी चरण सिंह के नेतृत्व में औपचारिक रूप से मिली–जुली सरकार का गठन किया। दलीय स्वार्थ, सैद्धान्तिक मतभेद और राजनीतिक महत्वाकांक्षा ने इन दलों के बीच संघर्ष उत्पन्न कर दिया और केवल 23 दिन बाद ही इस मिश्रित मंत्रिमंडल का पतन हो गया। चौधरी चरण सिंह को विवश होकर त्यागपत्र देना पड़ा। चौधरी चरण सिंह लोकसभा में केवल 2 मिनट के लिए प्रधानमंत्री के स्थान पर बैठ सके और वह भी त्याग पत्र देने के बाद।

1980 में लोकसभा के मध्यावधि चुनाव कराए गए जिसमें कांग्रेस दल के राजनीतिक एकाधिकार की पुनर्स्थापना हुई। वास्तविकता यह है कि राज्यों में और केंद्रीय स्तर पर मिली–जुली सरकारों की विफलता ही कांग्रेस की सफलता और लोकप्रियता का कारण बन गई। 1977 के चुनाव में कांग्रेस को

अपदस्थ करने वाले मतदाताओं ने स्थिर सरकार की खोज में मजबूर होकर एक बार फिर कांग्रेस के हाथों में देश का भविष्य सौंप दिया।

दिसम्बर 1984 में हुए आठवीं लोकसभा के चुनाव में कांग्रेस पार्टी को लोकसभा में 78.प्रतिशत स्थान प्राप्त हुए। इतनी भारी सफलता इससे पहले कभी भी कांग्रेस को न मिली थी।

1989 के लोकसभा चुनाव में स्थिति बिल्कुल बदल गई। कांग्रेस शासन का अन्त हो गया और केन्द्र में जनता दल ने मिली–जुली सरकार का गठन किया। 1952 के बाद से यह दूसरा अवसर था जब केन्द्रीय स्तर पर वी.पी. सिंह के नेतृत्व में गैर कांग्रेसी सरकार की स्थापना हुई।

नेशनल फ्रन्ट की सरकार ''मिश्रित दल की मिश्रित सरकार'' थी[11]। यह 1977 की 'जनता पार्टी' की सरकार से कुछ भिन्न थी। सैद्धान्तिक रूप से 'जनता दल' की सरकार अल्पमत की सरकार थी क्योंकि इसे लोकसभा में केवल 141 स्थान प्राप्त थे जब कि कांग्रेस पार्टी अब भी सबसे बड़ा राजनीतिक दल (193 स्थान) था। इसके विपरीत 1977 के चुनाव में जनता पार्टी के विभिन्न घटकों की सामूहिक संख्या 295 थी।

कांग्रेस के विरुद्ध 5 राजनीतिक दलों–जनता दल, कांग्रेस (एस) तथा तीन राज्य स्तरीय दलों–तेलगूदेशम, डी.एम.के. तथा ए.जी.पी. ने नेशनल फ्रन्ट का गठन करके सरकार बनाई जिसे भाजपा तथा वामपंथी दलों ने बाहर से समर्थन दिया।

वी.पी. सिंह के नेतृत्व में बनी जनता दल की यह सरकार एक ओर स्वयं अपने दल की आन्तरिक गुटबन्दी का शिकार हो गई और दूसरी ओर अपने समर्थक–दलों का अधिक दिनों तक समर्थन न प्राप्त कर सकी। वी.पी. सिंह की नीतियों और कार्यशैली से असंतुष्ट होकर उप–प्रधानमंत्री देवीलाल ने त्यागपत्र दे दिया और बढ़ती हुई आन्तरिक गुटबन्दी के परिणामस्वरूप जनता दल 5 नबम्बर 1990 को दो दलों में विभाजित हो गया।

वी.पी. सिंह द्वारा मण्डल कमीशन रिपोर्ट को स्वीकार करने से भाजपा तथा अन्य दलों में काफी असंतोष था। उनका विचार था कि सस्ती लोकप्रियता के लिए वी.पी. सिंह ने मण्डल कमीशन की संस्तुतियों को बगैर अन्य दलों की सहमति के स्वीकार कर लिया है। भाजपा ने बाबरी मस्जिद–राम जन्मभूमि के मुद्दे को लेकर 23 अक्टूबर 1990 को सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया, कांग्रेस ने यह घोषणा कर दी कि यदि जनता दल का नेतृत्व वी.पी. सिंह के हाथों में रहा तो वह सरकार के विरोध में मत देगी। 07 नबम्बर 1990 को लोकसभा में पराजित होने के बाद वी.पी. सिंह की 11 महीनों की सरकार का अन्त हो गया।

वी.पी. सिंह मंत्रिमंडल के त्यागपत्र के बाद जनता दल से अलग होने वाले गुट, जनता दल (सोशलिस्ट) के नेता चन्द्रशेखर ने 10, नबम्बर 1990 को सरकार का गठन किया। इस समय लोकसभा में कांग्रेस सबसे बड़ा राजनीतिक दल (195 सदस्य) था किन्तु कांग्रेस ने स्वयं सरकार बनाने के बजाए चन्द्रशेखर को बाहर से समर्थन देने की घोषणा की। यह उल्लेखनीय है कि चन्द्रशेखर के दल में केवल 61 सदस्य थे जिसने मुख्य रूप से कांग्रेस के सहारे सरकार का गठन किया। इस सरकार के निर्माण में ही इसके पतन के कारण विद्यमान थे। 21 जून 1991 को चन्द्रशेखर मंत्रिमंडल का अन्त हो गया और 9वीं लोकसभा अपने सबसे संक्षिप्त कार्यकाल 15 मास के बाद विघटित कर दी गई[12]।

मई–जून 1991 में लोकसभा के चुनाव हुए। 20 जून 1991 को 10वीं लोकसभा का विधिवत गठन हुआ। इस चुनाव में भी किसी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत न मिला। कांग्रेस को 220 स्थान मिले और अल्पमत में होने के बाद भी उसने नरसिंह राव के नेतृत्व में सरकार का निर्माण किया। इसने अन्य दलों के समर्थन से अपना पाँच वर्ष का कार्यकाल पूरा किया।

1996 में लोकसभा चुनाव में भाजपा को अप्रत्याशित सफलता मिली। इसने 161 स्थान प्राप्त करके लोकसभा में प्रथम स्थान प्राप्त किया। कांग्रेस को केवल 140 सीटें मिलीं। भाजपा ने अपने सहयोगी दलों शिवसेना (15), समता पार्टी (8) और विश्वहिन्दू परिषद (3) की सहायता से सरकार बनाने का दावा पेश किया। 16 मई 1996 को अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में पहली बार भाजपा ने 12 अन्य दलों के समर्थन से मिश्रित सरकार का गठन किया। उन्हें लोकसभा में अतिशीघ्र अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए कहा गया। लोकसभा में सरकार द्वारा प्रस्तुत किए गए विश्वास प्रस्ताव पर दो दिन के वाद–विवाद के उपरान्त अटल बिहारी वाजपेयी ने यह महसूस किया कि वह सदन में बहुमत न सिद्ध कर पायेंगे। अतः

विश्वास मत पर मतदान से पहले ही उन्होंने अपना त्यागपत्र दे दिया। इस प्रकार 13 दिनों के बाद भाजपा मंत्रिमंडल का विघटन हो गया[13]।

अटल बिहारी वाजपेयी के त्यागपत्र देने के बाद राष्ट्रपति द्वारा कांग्रेस दल के नेता नरसिंहराव को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया गया किन्तु उन्होंने अपनी असमर्थता व्यक्त की। तत्पश्चात् यूनाइटेड फ्रन्ट के नेता एच.डी. देवगौड़ा को आमंत्रित किया गया जिन्होंने 1 जून 1996 को प्रधानमंत्री के पद की शपथ ली। देवगौड़ा की सरकार कांग्रेस के समर्थन से लगभग 10 महीने तक ही चल सकी। इसी बीच सीताराम केसरी कांग्रेस दल के अध्यक्ष हो गए। देवगौड़ा और केसरी के संबंध ठीक न रहने के कारण कांग्रेस ने देवगौड़ा सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया। कांग्रेस ने यूनाइटेड फ्रन्ट को समर्थन देने के लिए यह शर्त रखी कि वह देवगौड़ा के स्थान पर कोई दूसरा नेता चुनें।

यूनाइटेड फ्रन्ट ने 19 अप्रैल 1997 को आई.के. गुजराल को अपना नेता चुन लिया जिन्होंने 21 अप्रैल 1997 को प्रधानमंत्री–पद की शपथ ली और 22 अप्रैल 1997 को लोकसभा में विश्वासमत प्राप्त किया। इसी बीच पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की हत्या की जाँच करने वाले 'जैन कमीशन' की रिपोर्ट आ गई जिसमें राजीव गांधी की हत्या के लिए तत्कालीन डी.एम.के. सरकार को उत्तरदायी ठहराया गया था। कांग्रेस का आग्रह था कि प्रधानमंत्री गुजराल अपने मंत्रिमंडल से डी.एम.के. के मंत्रियों को हटा दें। इस माँग को गुजराल ने स्वीकार नहीं किया। परिणामस्वरूप कांग्रेस ने गुजराल मंत्रिमंडल से अपना समर्थन वापस ले लिया। लगभग 7 महीनों के बाद गुजराल ने 28 नबम्बर 1997 को अपना त्यागपत्र दे दिया।

1998 के लोकसभा चुनाव के बाद अटल बिहारी बाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा ने अन्य सहयोगी दलों के समर्थन से 19 मार्च 1998 को सरकार का गठन किया। इस भाजपा मंत्रिमंडल में 13 दल सम्मिलित थे। इस सरकार और पूर्व में गठित की गई मिली–जुली सरकारों के बीच मौलिक अन्तर यह था कि 1998 से पहले जितनी भी मिश्रित सरकारें बनीं वे विभिन्न दलों के साम्यिक समझौते का परिणाम थीं जो चुनाव के बाद उनके बीच हुए, जबकि 1998 की भाजपा सरकार के घटक दल चुनाव के पूर्व हुए पारस्परिक समझौते के आधार पर चुनाव–मैदान में उतरे थे। अतः चुनाव के पश्चात् सरकार बनाने के लिए उन्हें नए सिरे से राजनीतिक समीकरण बनाने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ी।

1998 की भाजपा सरकार में ए.डी.एम.के. सबसे बड़ा घटक दल था। सरकार बनने के कुछ ही दिनों बाद से दल की नेता जयललिता ने विभिन्न प्रकार की माँगों को लेकर सरकार पर अपना दबाव बनाना शुरू कर दिया जिसमें तमिलनाडु की डी.एम.के. सरकार को भंग करने और स्वयं के विरूद्ध चल रहे भ्रष्टाचार के मुकदमों में ढिलाई देने की बात भी सम्मिलित थी। अन्ततोगत्वा 14 अप्रैल 1999 को जयललिता ने सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया और केवल 13 महीनों बाद 17 अप्रैल 1999 को दूसरी भाजपा सरकार का अन्त हो गया[14]।

1999 का लोकसभा चुनाव भाजपा ने अपने सहयोगी दलों के साथ 'नेशनल डेमोक्रेटिक अलाइंस' (एन.डी.ए. के) सामान्य मैनीफेस्टो पर लड़ा। इस चुनाव में एन.डी.ए. को स्पष्ट बहुमत मिला और 13 अक्टूबर 1999 को भाजपा की तीसरी मिश्रित सरकार का गठन हुआ।

अप्रैल–मई 2004 के 14वीं लोकसभा के चुनाव के परिणाम अत्यधिक आश्चर्यजनक थे। सभी अनुमानों और स्वयं कांग्रेस पार्टी की आशाओं के बिल्कुल विपरीत, इस चुनाव में भारतीय जनता पार्टी गठबंधन को 543 स्थानों में से केवल 186 स्थान प्राप्त हुए। दूसरी और कांग्रेस को 221 सीट मिली। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व वाली संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन को 335 सीट प्राप्त हुई[15]।

लगभग एक दशक तक सत्ता से बाहर रहने के बाद और विगत तीन चुनावों में अपने निराशाजनक निष्पादन के पश्चात् कांग्रेस पार्टी को यह लगा कि सरकार बनाने का अवसर हाथ से न जाने देना चाहिए। अतः वामपंथी दलों के बाह्यय समर्थन से कांग्रेस में पहली बार राष्ट्रीय स्तर पर एक मिश्रित सरकार का निर्माण किया। 1 मई 2004 में डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में गठित मंत्रिमंडल ने शपथ ली। इस गठबंधन

में कांग्रेस सहित 12 राजनैतिक दल शामिल थे। वामपंथी दलों ने मंत्रिमंडल से बाहर रहकर समर्थन देना स्वीकार किया। पिछली मिश्रित सरकारों की तरह इस गठबंधन सरकार में भी क्षेत्रीय राजनैतिक दलों की संख्या ज्यादा थी। काग्रेस पार्टी द्वारा मिश्रित सरकार बनाने का यह पहला प्रयोग सफल रहा।

सन् 2009 के आम चुनाव में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मनमोहन सिंह सरकार ने संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन के साथ सरकार बनायी, जिसमें कांग्रेस की 206 सीटों के साथ यू.पी.ए. गठबन्धन की 56 सीटें शामिल थीं।

2014 की सोलहवीं लोकसभा चुनाव भारतीय जनता पार्टी के 282 सीट के साथ राष्ट्रीय जनतांन्त्रिक गठबन्धन ने 336 सीट पर जीत प्राप्त की तथा नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में एन.डी.ए. ने सरकार बनायी। सन् 1984 के बाद भारतीय जनता पार्टी तथा सहयोगी पार्टियों ने सबसे बड़ी बहुमत वाली सरकार बनाने का अधिकार जीता। भाजपा ने पिछले 30 वर्षों के दौरान लोकसभा चुनाव में अपने दम पर बहुमत हाशिल करने वाली पहली सरकार बनकर उभरी।

ऐसा कहा जाता है कि 1989 के बाद से भारत में मिली–जुली सरकारों का युग प्रारम्भ हुआ है और निकट भविष्य में किसी एक दल की सरकार की स्थापना संभव न होगी। यह भी कहा जाता है कि जनादेश मिली–जुली सरकारों के पक्ष में है, जो निःसंदेह एक हास्यास्पद कथन प्रतीत होता है। संसदीय शासन व्यवस्था में मिश्रित सरकार को स्वस्थ्य सरकार नहीं माना जाता क्योंकि यह राजनीतिक अस्थिरता को जन्म देती है। अतः यह कहना कि जनादेश मिली–जुली सरकार के लिए है, भारतीय मतदाताओं की राजनीतिक बुद्धिमत्ता पर प्रत्यक्ष आपेक्ष है। क्या भारत के लोग इतने नासमझ हैं कि वे स्थिर सरकार की अपेक्षा एक अस्थिर और विभिन्न दोषों से ग्रस्त साझा सरकार को पसंद करते हैं?

चुनाव में किसी रानजीतिक दल को स्पष्ट बहुमत न मिलने का कारण यह है कि कोई दल ऐसी सुदृढ़ स्थिति में नहीं है कि स्पष्ट बहुमत प्राप्त कर सके इसलिए मिश्रित सरकार बनने के अतिरिक्त कोई और विकल्प नहीं रह जाता। इसमें दोष दल प्रणाली का है, मतदाताओं का नहीं।

सन्दर्भ (Reference)

1. एस. एम. सईद, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, भारत बुक सेण्टर लखनऊ।
2. एस. एम. सईद, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, भारत बुक सेण्टर लखनऊ।
3. डा0 कश्यप सुभाष, भारतीय राजनीतिक सिद्धांत समस्यायें और सुधार, राधा पब्लिकेशन, नयी दिल्ली।
4. राजकिशोर, भारत का राजनीति संकट, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
5. डॉ. कमलेश कुमार सिंह, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
6. डा0 मोदी.एम.पी. भारतीय राजनीति की प्रवृत्तियाँ द कालेज बुक डिपो, जयपुर।
7. डॉ. कमलेश कुमार सिंह, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
8. बाली सूर्यकांत, भारत की राजनीति के महाप्रश्न, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
9. एस. एम. सईद, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, भारत बुक सेण्टर लखनऊ।
10. मनोरमा ईयर बुक 2020.
11. दुबे अभय कुमार, राजनीति की किताब, रजनी कोठारी का कृतित्व, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
12. डॉ. कमलेश कुमार सिंह, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
13. इण्डिया टुडे, जून, 1996
14. इण्डिया टुडे, जून, 1999
15. एस. एम. सईद, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, भारत बुक सेण्टर लखनऊ।